निदेशक (छात्र) और अन्य।

बनाम

वैभव सिंह चौहान

(सिविल अपील सं. 34/2008)

4 नवंबर, 2008

[अल्टमास कबीर और मार्कंडेय काटजू, जे. जे.]

शिक्षाः

राष्ट्रीय होटल प्रबंधन और खानपान प्रौद्योगिकी परिषद, नई दिल्ली के परीक्षा नियमः

आर.आर. 8.1 और 9.2- 'कदाचार' - 2005 में परीक्षा लिखने के दौरान छात्र के कब्जे से संबंधित विषय की एक पर्ची पायी गयी - एक शैक्षणिक सत्र के लिए निर्योग्य किया गया और शैक्षणिक सत्र 2006-2007 के लिए समान कक्षा में पुर्नप्रवेश के लिए अनुमति दी गई - उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश से आने वाली संबंधित विषय की परीक्षा में छात्र को पुनः उपस्थित होने की अनुमति देने हेतु संस्था को आदेशित किया गया और अंतिम निर्णय द्वारा संस्था को आदेशित किया गया कि छात्र के द्वारा दिए गए पुनः लिखित परीक्षा का परिणाम और 2005 की

परीक्षा में दिए गए सभी विषयों का परिणाम जारी करें - डिवीजन बैंच ने हस्तक्षेप करने से इंकार करते हुए कहा कि संस्था द्वारा दिया गया दण्ड अनुचित था - अभिनिर्धारित किया गया: छात्र साफ तौर पर कदाचार का दोषी है - उसे न्यूनतम सजा दी गई है - अपवादजनक परिस्थितियों को छोड़कर कम दण्ड नहीं दिया जा सकता है और यह मामला न्यूनतम सजा को कम या माफ करने के लिए अपने विवेक का उपयोग करने के लिए उपयुक्त नहीं था - संस्था द्वारा पारित किए गए आदेश में कोई अवैधता नहीं थी - ना ही नियम अवैध है ना ही संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लघन है।

शैक्षणिक मामले - परीक्षाएं - कदाचार का दोषी पाया गया छात्र - अभिनिर्धारित किया गया: उच्च न्यायालयों को शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा बनाए गए निजी अधिकरणों द्वारा शैक्षणिक मामलों में पारित किए गए आदेशों में साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि किसी विधि के सिद्धांत या किसी कानूनी नियम का स्पष्ट उल्लघन नहीं हो - शैक्षिक मामलों में सख्त अनुशासन होना चाहिए और कदाचार को कठोरता से दण्डित किया जाना चाहिए।

प्रतिवादी आथित्य और होटल प्रशासन में डिग्री कोर्स कर रहा था। तीसरे और अंतिम साल की परीक्षा जो 2005 में हुई थी, फंरट आफिस मैनेजमेंट विषय में उत्तर लिखने के दौरान उसके पास संबंधित विषय की

एक पर्ची पायी गयी। उसके खिलाफ कदाचार का मामला शुरू किया गया। प्रत्यर्थी ने स्वीकार किया कि वह पर्ची उसकी लिखावट में थी। संस्था ने उसे एक शैक्षणिक सत्र के लिए निर्योग्य कर दिया और वर्ष 2006-2007 के शैक्षणिक सत्र में उसी कक्षा में पुनः प्रवेश लेने के लिए और 2007 के वार्षिक परीक्षा में उपस्थित होने के लिए अनुमत किया गया। छात्र द्वारा दाखिल की गई रिट याचिका में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने दिनांक 31.03.2006 के अंतरिम आदेश के तहत संस्था को निर्देशित किया कि छात्र को आने वाले फंरट आफिस मैंनेजमेंट की परीक्षा में उपस्थित होने के लिए अनुमत किया जाए। उसके पश्चात् अंतिम निर्णय में एकल न्यायाधीश ने संस्था को आदेशित किया कि छात्र द्वारा फंरट आफिस मैनेजमेंट विषय की पुनः लिखित परीक्षा एवं 2005 में दी गई अन्य विषयों की परीक्षा का परिणाम निर्धारित किया जाए।

न्यायालय में अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:-

अभिनिर्धारित 1.प्रत्यर्थी स्पष्ट तौर पर राष्ट्रीय होटल प्रबंध काउंसिल और कैटरिंग टैक्नोलाजी, नई दिल्ली के परीक्षा नियमों के नियम 8.1 के उप नियम (ए) के तहत परिभाषित कदाचार का दोषी है। यह निवेदन कि ऐसा कोई साक्ष्य दर्शित नहीं है, जिससे प्रत्यर्थी के कब्जे से पायी गयी पर्ची का उसके द्वारा वास्तव में प्रयोग किया गया हो, पूर्णतया असंगत है। प्रासंगिक यह है कि क्या परीक्षार्थी के कब्जे से पायी गयी पर्ची प्रश्नगत

परीक्षा से संबंधित थी। यदि ऐसा है तो यह कदाचार के अंतर्गत आता है। इस केस में परीक्षार्थी के पास परीक्षा लिखने के दौरान परीक्षा हाल में लायी गयी पर्ची उसी परीक्षा से संबंधित थी। प्रत्यर्थी द्वारा पर्ची का प्रयोग वास्तव में किया गया या नहीं, प्रासंगिक नहीं है। यह सही है कि परीक्षा शुरू होने से पहले पर्ची को देखना कदाचार नहीं है, परंतु इस मामले में न्यायालय के समक्ष तथ्य यह है कि परीक्षा के दौरान पर्ची का प्रयोग किया गया है, परीक्षा शुरू होने से पहले नहीं। शैक्षणिक मामलों में कठोर अनुशासन होना चाहिए और कदाचार को गंभीरता से दण्डित किया जाना चाहिए। [पैरा 8,9,18 और 20] [230] ई, एफ, जी; 236-एफ; 237-बी]

C.B.S.E. v. विनीता महाजन और अन्र।, [1993]3 पूरक, एससीआर 387=[1994] 1 एससीसी6; क्षेत्रीय अधिकारी, C.B.S.E. v. शीना पीतांबरन और अन्य।, [2003] 3 पूरक। एस. सी. आर 275= [2003] 7 एससीसी 719; C.B.S.E. & Anr. वी. पी. सुनील कुमार और अन्य।, [1998] 3 एस. सी. आर. 327 = [1998] 5 एस. सी. सी. 377 और गुरु नानक देव विश्वविद्यालय वी. परमिंदर कुमार बंसल और अन्य।, [1993] 4 एससीसी 401 , के आधार पर।

2.1 . नियम 9.2 में कहा गया है कि भले ही कोई उम्मीदवार केवल एक पेपर में अनुचित साधनों का उपयोग किया जाता है, उसे सभी पेपरों में विफल माना जाएगा। तत्काल मामले में, प्रत्यर्थी को इसमें कोई

संदेह नहीं है कि 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' में पेपर की एक पर्ची के साथ पाया गया था जो केवल एक पेपर था , लेकिन नियम 9.2 को देखते हुए उसे पूरी परीक्षा में यानी सभी पेपरों में फिर से उपस्थित होना होगा, और केवल 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' में नहीं। [पैरा 21] [237 डी-ई]

2.2. प्रत्यर्थी /परीक्षक को नियम 9.2 के तहत न्यूनतम सजा दी गई है और सिवाय असाधारण परिस्थितियाँ के उससे कम सजा नहीं दी जा सकती थी। यह सच है कि जब कोई व्यक्ति अपना अपराध स्वीकार करता है इसे अक्सर एक शमन के रूप में माना जाता है , यदि अनुमत किया जाता है तो। फिर भी यह एक पूर्ण नियम नहीं है और सभी प्रकार के मामलों पर लागु नहीं होगा। शैक्षणिक मामलों में कोई भी उदारता नहीं रखनी चाहिए। यह अपवादजनक प्रकार का मामला नहीं है, जिसके लिए उदारता नहीं दिखानी थी। [पैरा 25] [233-एफ]

उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा संस्थान को अंतरिम आदेश के तहत दिया गया आदेश कि वह याचिकाकर्ता को आने वाले फंरट आफिस मैनेजमंट विषय की परीक्षा में पुनः उपस्थित होने दिया जाए और रिट याचिका के अंतिम निस्तारण पर दिया गया आदेश कि याचिकाकर्ता द्वारा अप्रैल, 2006 में दी गई फंरट आफिस मैनेजमेंट विषय की परीक्षा और 2005 की परीक्षा में दिए गए अन्य पेपर का परिणाम जारी किया जाए, अवैध था। उच्च न्यायालय की डिवीजन बैंच का निर्णय सही नहीं था

कि दिया गया दण्ड कारित किए गए अपराध के अनुपात में सही नहीं था। नियम 9.2 को देखते हुए प्रत्यर्थी को न्यूनतम दण्ड दिया गया और उसे एक शैक्षणिक सत्र के लिए अयोग्य करार दिया तथा सत्र 2006-2007 में पुनः प्रवेश लेने हेतु अनुमत किया गया। संस्थान के इस आदेश में कोई अवैधता नहीं थी कि यह न्यूनतम सजा को माफ करने या कम करने के विवेक का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं था। एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंड पीठ दोनों के निर्णयों को अपास्त किया जाता है। [पैरा 12,21-23,25,27 और 30] [238] एफ-जी; 237-डी-ई; जी, एच; 238-एफ; 239-बी]

2.4. परीक्षा नियमों में कोई अवैधता नहीं है। अनुच्छेद 14 का उल्लघन नहीं हुआ है और ना ही संविधान के किसी प्रावधान का और ना किसी विधि का। [पैरा 29] [239-डी-ई]

3. इस न्यायालय ने बार-बार यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय को साधारणतया शैक्षणिक मामलों में शैक्षणिक संस्थानों द्वारा चलाए जा रहे निजी अधिकरणों द्वारा पारित आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि किसी कानूनी नियम या विधि के सिद्धांत का स्पष्ट उल्लंघन नहीं हुआ हो। साथ ही शैक्षणिक संस्थानों की परीक्षाओं में कठोरता से शुद्धता होनी चाहिए और उन उम्मीदवारों के साथ किसी भी प्रकार की सहानुभूति और उदारता नहीं दिखानी चाहिए, जो परीक्षाओं में

अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। [पैरा 32] [239-एच; 240-ए-सी]

हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, यू. पी. इलाहाबाद और अन्र. वी. बागलेश्वर प्रसाद और अन्र, आकाशवाणी [1963] एससीआर 767 = (1966) एससी 875, डॉ. जे. पी. कुलश्रेष्ठ और अन्य। वी. कुलाधिपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और अन्य।, [1980] 3 एससीआर 902 ए. आई. आर.1980 एस.सी. 2141 और राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम। कर्नाटक विश्वविद्यालय और अन्र., [1986] एससीआर 912 = एआईआर (1986) एससी 1448, पर भरोसा किया।

मामला कानून संदर्भः

[1993] 3 पूरक। एससीआर 387	भरोसा करें	पैरा 9
[2003] 3 पूरक। एससीआर 275	भरोसा करें	पैर 15
[1998] 3 एससीआर 327	भरोसा करें	पैरा15
[1993] 4 एस. सी. सी. 401	भरोसा करें	पैरा15
[1963] एससीआर 767	भरोसा करें	पैरा32
[1980] 3 एससीआर 902	भरोसा करें	पैरा32
[1986] एससीआर 91	भरोसा करें	पैरा32

सिविल अपील न्यायनिर्णयः 2008 की सिविल अपील सं. 34

दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली के 2007 की लेटर पेटेंट अपील नं. 22 के अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 24.5.2007 से।

अपीलार्थियों के लिए कामिनी जयसवाल।

ललित भसीन, नीना गुप्ता, स्विगिन जॉर्ज और बीना गुप्ता उत्तरदाता के लिए।

न्यायालय का निर्णय मारकंडे काटजु जे. द्वारा दिया गया।

1. विशेष अनुमति द्वारा यह अपील 2007 के पत्र पेटेंट अपील संख्या 22 में दिल्ली उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के दिनांक 24.5.2007 के आक्षेपित निर्णय और अंतिम आदेश के खिलाफ दायर की गई है। उच्च न्यायालय की विद्वान डिवीजन बेंच ने एलपीए को निम्नलिखित आदेश से खारिज कर दिया -

> "सुना गया। भिन्न-भिन्न कारणों से, यह अपील विफल हो जाती है और 5,000/- रुपये की लागत के साथ खारिज की जाती है।"

2. इसके बाद, विद्वान डिवीजन बेंच द्वारा कारण दिए गए थे जिन्हें इस अपील में दायर जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है।

3. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वकील सुश्री कामिनी जयसवाल और प्रत्यर्थी के लिए विद्वान वकील श्री ललित भसीन को सुना गया।

4. मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी वैभव सिंह चौहान (बाद में प्रत्यर्थी के रूप में संदर्भित) ने शैक्षणिक सत्र 2002-03 में आतिथ्य और होटल प्रशासन में डिग्री पाठ्यक्रम में डॉ. अंबेडकर इंस्टीट्यूट ऑफ होटल मैनेजमेंट, न्यूट्रिशन एंड कैटरिंग टेक्नोलॉजी, चंडीगढ़ में भर्ती कराया गया था। उसने पहले और दूसरे साल में सभी विषयों में सफलता हासिल की। इसके बाद वह शैक्षणिक वर्ष 2004-05 की परीक्षा के तीसरे और अंतिम वर्ष में उपस्थित हुआ। 19.4.2005 को जब वह 'फ्रंट ऑफिस मैनेजमेंट' विषय में अपनी उत्तर पुस्तिका लिख रहा था तो उसके पास से एक पर्ची मिली जिसमें परीक्षा से संबंधित सामग्री थी। निरीक्षण कर्मचारियों ने पर्ची को अपने कब्जे में ले लिया और प्रतिवादी को एक नई उत्तर पुस्तिका जारी की गई।

5. अपीलकर्ता संस्थान की परीक्षा समिति द्वारा प्रतिवादी के खिलाफ पर्ची की जब्ती के आधार पर कदाचार का मामला शुरू किया गया था। पूछताछ से पहले दिनांक 19.4.2005 को अपने बयान में प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि जो पर्ची उसके कब्जे से जब्त की गई थी वह उसकी ही लिखावट में थी। इस प्रकार, उसने अपने ऊपर लगे आरोप को स्वीकार कर लिया। हालाँकि, उसने निवेदन किया कि उसे इस दुष्क्रत्य के लिए बेहद

खेद है और वह इसे दोबारा नहीं दोहराएगा।

6. संस्थान ने अपने आदेश दिनांक 7.7.2005 द्वारा प्रतिवादी को संस्थान के परीक्षा नियम के नियम 9.2 के अनुसार एक शैक्षणिक सत्र के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। प्रतिवादी को शैक्षणिक सत्र 2006-07 के लिए उसी कक्षा में पुनः प्रवेश लेने की अनुमति दी गई थी और उसे 2007 में वार्षिक परीक्षा में उपस्थित होना था।

7. इस स्तर पर कुछ प्रासंगिक नियमों को उद्धृत करना प्रासंगिक हो सकता है, जैसे कि राष्ट्रीय होटल प्रबंधन और खानपान प्रौद्योगिकी परिषद, नई दिल्ली के परीक्षा नियम (इसके बाद 'परीक्षा नियम' के रूप में संदर्भित)।

8. उक्त नियमों का नियम 8.1 परीक्षा में 'कदाचार' को परिभाषित करता है। उक्त नियम 8.1 का उप- नियम (1) निम्नलिखित को परीक्षा में कदाचारों में से एक के रूप में परिभाषित करता है:

> "उम्मीदवार जिसके पास कोई नोटबुक (ओं) या नोट्स या चिट्स या परीक्षा पत्र से संबंधित विषय से संबंधित कोई अन्य अनधिकृत सामग्री पाई जाती है।"

हमारी राय में प्रतिवादी स्पष्ट रूप से कदाचार का दोषी है जैसा कि परीक्षा नियमों के नियम 8.1 के उप-नियम (1) में परिभाषित है।

9. इस संबंध में प्रतिवादी के विद्वान वकील ने तर्क प्रस्तुत किया कि यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि प्रतिवादी ने वास्तव में अपने कब्जे में मिली कागज की उक्त पर्ची का उपयोग किया था। हमारी राय में, यह पूरी तरह अप्रासंगिक है। प्रासंगिक बात यह है कि क्या परीक्षार्थी के पास से मिली कागज की पर्ची संबंधित परीक्षा पत्र से संबंधित है। यदि ऐसा होता है तो यह कदाचार है। इस विशेष मामले में, कागज की उक्त पर्ची परीक्षा हॉल में लाई गई थी और जब परीक्षा चल रही थी तो वह परीक्षार्थी के पास पाई गई। प्रतिवादी ने वास्तव में उस पर्ची का उपयोग किया या नहीं, यह अप्रासंगिक है। इस दृष्टिकोण को सीबीएसई बनाम विनीता महाजन और अन्य (1994) 1 एससीसी 6 में इस न्यायालय के फैसले से समर्थन मिलता है। इसके अलावा, यह ऊपर उद्धृत परीक्षा नियमों के उप नियम (1) से भी प्रमाणित होता है।

10. वर्तमान मामले में इसमें कोई संदेह नहीं है कि पेपर की पर्ची में संबंधित परीक्षा से संबंधित सामग्री थी। इसलिए, हम श्री ललित भसीन की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि प्रतिवादी कदाचार का दोषी नहीं है क्योंकि उसे कागज के उस टुकड़े का उपयोग करते हुए नहीं पाया गया।

11. परीक्षा नियमों का नियम 9.2 इस प्रकार है:

> "यदि कोई अभ्यर्थी उत्तर पुस्तिका या प्रश्न पत्र को हल के साथ बदलता हुआ या नकल करता हुआ पाया गया या प्रश्न

पत्र के विषय से संबंधित कागजात, किताबें, नोट्स या सामग्री अपने पास या उसकी पहुंच में पाया गया तो उसे न्यूनतम एक शैक्षणिक सत्र की अवधि के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। प्रश्नगत परीक्षा के बाद और उस परीक्षा के बाद अधिकतम तीन साल की अवधि के लिए अयोग्य ठहराया जा सकता है, जिसमें उसने (जानबूझकर) अनुचित साधन अपनाए हैं। इस प्रकार अनुचित साधनों में लिप्त पाए जाने वाले उम्मीदवार को सभी विषयों में अनुत्तीर्ण माना जाएगा। अयोग्यता की अवधि समाप्त होने के बाद ऐसे उम्मीदवार को पूरी परीक्षा फिर से देनी होगी।"

(जोर दिया गया)

12. ऐसा प्रतीत होता है कि नियम 9.2 के अनुसरण में प्रतिवादी को न्यूनतम सजा दी गई है, क्योंकि उसे सत्र 2006-07 के लिए पुनः प्रवेश लेने की अनुमति देते हुए एक शैक्षणिक सत्र के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है। इसलिए, हमें दिनांक 7.7.2005 के आदेश में कोई अवैधता नहीं मिली, जो इस अपील के अनुबंध पी-3 के रूप में संलग्न है।

13. प्रतिवादी ने दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 31.3.2006 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसकी

एक प्रति इस अपील के साथ अनुबंध पी-5 के रूप में संलग्न है।

14. चूंकि उस अंतरिम आदेश की इस अपील में प्रासंगिकता है, इसलिए हम इसे पूरी तरह से इस प्रकार उद्धृत कर रहे हैं:

"आदेश 31.03.2006

सीएम. संख्या 3725/2006

याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि उसके पास कागज की एक चिट/पर्ची पाई गई थी जिस पर कुछ टिप्पणियाँ की गई थीं। वर्तमान समय में जो रिकॉर्ड उपलब्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्या वास्तव में इस चिट का उपयोग परीक्षा में किया गया था। याचिकाकर्ता ने तुरंत पर्ची अपने पास होने की बात स्वीकार की और कहा कि ऐसा दोबारा नहीं होगा। इसलिए, उसका पश्चाताप सहज है।

प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता को प्रश्नगत परीक्षा के बाद एक शैक्षणिक सत्र के लिए नेशनल काउंसिल फॉर होटल मैनेजमेंट कैटरिंग टेक्नोलॉजी के परीक्षा नियम, 2001 के नियम 9.2 के तहत सजा दी है। यह प्रावधान अयोग्यता लगाने को भी सक्षम बनाता है जिसे तीन साल तक बढ़ाया

जा सकता है। नियम 10.6 अधिकारियों को सज़ा की न्यूनतम अवधि, यानी एक वर्ष की भी छूट देता है।

रिट याचिका में नियमों और विनियमों की वैधता को चुनौती दी गई है। प्रतिवादी के वकील का कहना है कि ये नियम 24 संस्थानों पर लागू होते हैं जो उत्तरदाताओं द्वारा चलाए जाते हैं।

इससे पहले कि किसी व्यक्ति को कोई सजा दी जाए, यहां तक कि उन परिस्थितियों में भी जहां वह परीक्षा से संबंधित या संबंधित जानकारी वाली कागज की एक पर्ची अपने कब्जे में रखना स्वीकार करता है, प्राधिकारी को सावधानी से अपने दिमाग का उपयोग करना चाहिए कि क्या परिस्थितियों के लिए किसी विशेष सजा की आवश्यकता है। याचिकाकर्ता के वकील ने यह तर्क दिया है कि जहां छात्र शामिल हैं, वहां गलती को कुछ लचीलेपन के साथ देखा जाना चाहिए।

हालाँकि, यदि अधिकारियों द्वारा बहुत अधिक ढिलाई दिखाई जाती है, विशेष रूप से परीक्षा में नकल या अनुचित साधनों के उपयोग के मामले में, तो इससे शैक्षणिक मानकों में निश्चित रूप से गिरावट आएगी। उत्तरदाताओं के विद्वान

वकील का यह भी कहना है कि शैक्षणिक मामलों में न्यायालय को किसी भी विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जहां तक अंतिम निवेदन का सवाल है, शैक्षणिक मानकों में न्यायिक हस्तक्षेप और सजा की न्यायिक समीक्षा में अंतर है, आदेश तर्कसंगत होना चाहिए। मौजूदा मामले में, बस इतना कहा गया है कि याचिकाकर्ता "राष्ट्रीय परिषद के परीक्षा नियमों के नियम 9.2 के अनुसार शैक्षणिक सत्र के लिए अयोग्य है।" याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि उसे उसी कक्षा में पुनः प्रवेश लेना होगा और 2007 में वार्षिक परीक्षा में उपस्थित होना होगा। उत्तरदाताओं के वकील ने स्वीकार किया कि याचिकाकर्ता से अभ्यावेदन प्राप्त हुआ है, लेकिन वह यह बताने की स्थिति में नहीं है कि उसका निस्तारण हुआ या नहीं।

न्यायालय को अक्सर ऐसी स्वीकारोक्ति या माफी का सामना करना पड़ता है जो नाजुक स्थिति से बाहर निकलने के लिए गणना की जाती है। वर्तमान मामले में स्वीकारोक्ति/स्वीकारोक्ति/माफी स्वतःस्फूर्त रही है। एक पूरा शैक्षणिक और व्यावसायिक वर्ष बर्बाद हो गया। यह ऐसा

मामला नहीं है जहां याचिकाकर्ता स्वीकारोक्ति देकर पूर्ण दोषमुक्ति का दावा करता है। जब उत्तरदाताओं के नियमों में स्वयं सजा की न्यूनतम अवधि लगाने में छूट देने की शक्ति होती है, तो इस स्थिति पर उत्तरदाताओं द्वारा स्थानांतरित और विचार किया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया गया होता, और आक्षेपित निर्णय में दो साल की सज़ा देने से इनकार करने के लिए प्रशंसनीय कारण दिए गए होते (जैसा कि यह वास्तव में होता है), तो यह न्यायालय इस मामले में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होता। इतने गंभीर मामले पर भी उत्तरदाताओं ने उचित चिंता नहीं दिखाई और न ही कारण लिखना उचित समझा कि दो साल का प्रतिबंध क्यों लगाया गया है। यह सच है कि नियम स्पष्ट करते हैं कि शैक्षणिक अधिकारियों द्वारा विवेकाधिकार के तहत एक वर्ष की सजा का प्रावधान है। पहले मामले में, न्यायालय आमतौर पर शैक्षणिक मानदंडों पर शासन करने के लिए आवश्यक साधनों से सुसज्जित नहीं होगा और इसलिए उसे रिट शक्तियों का प्रयोग करने से उपेक्षा करनी चाहिए। जहां तक शैक्षणिक अधिकारियों द्वारा लिए गए निर्णय की न्यायिक समीक्षा का सवाल है, यदि न्यायालय सरकारी/प्रशासनिक निर्णयों में हस्तक्षेप कर सकता है, तो

कोई कारण नहीं है कि वह शैक्षणिक निर्णयों के संदर्भ में ऐसा नहीं कर सकता है। किसी भी स्थिति में जुर्माना लगाने के निर्णय को शैक्षणिक सत्र के रूप में वर्णित किया जाएगा। दोनों मामलों में न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या कार्रवाई में कोई मनमानी थी, या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन किया गया है या उनकी अनदेखी की गई है, या निर्णय वेडनसबरी अर्थ में अनुचित है। इन्हीं मापदंडों के तहत वर्तमान मामले पर विचार किया जाना है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विवादित आदेश दूरगामी परिणाम वाला है। ऐसे सभी मामलों में संबंधित प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपराधी को सुनवाई का पूर्ण और सार्थक अवसर दे। यह पहले ही नोट किया जा चुका है कि याचिकाकर्ता ने लगभग अनायास ही चिट रखने की बात कबूल कर ली थी। यह पूरी तरह से अटकलों पर छोड़ दिया गया है कि क्या वह परीक्षा के दौरान पर्ची का उपयोग कर रहा था। ऐसी दुविधा में पड़ा एक छात्र, तत्परता के साथ, अधिकारियों द्वारा उसे दिए गए आश्वासनों के आधार पर अपना कबूलनामा प्रस्तुत करेगा।

हालाँकि, जहां अधिकारियों के पास विवेकाधिकार उपलब्ध है, किसी भी सजा को माफ करने या हल्का या भारी लगाने से, उस परीक्षा से वंचित कर दिया जाएगा जिसमें याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ था और साथ ही अगले वर्ष भी। हालाँकि, नियम भी, जैसा कि ऊपर देखा गया है, कटौती के लिए प्राधिकारी विवेकाधिकार रखता है।

याचिकाकर्ता को 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति देने के लिए एक अंतरिम प्रार्थना की गई है, जिसके दौरान उसके पास कुछ आपत्तिजनक सामग्री पाई गई थी। कार्यवाही के इस चरण में मेरा विचार है कि उत्तरदाताओं ने नियमों को उनकी मूल भावना से लागू नहीं किया है और आपत्तिजनक सामग्री रखने के अपराध की तत्काल स्वीकृति/स्वीकृति को ध्यान में नहीं रखा है। यह निश्चित रूप से तर्कपूर्ण है कि आपत्तिजनक सामग्री का कब्ज़ा, बिना यह पता लगाए कि उस सामग्री का उपयोग परीक्षा में करने का इरादा था, दंडनीय नहीं होगा। अगर हम अपने छात्र दिनों के बारे में सोचें, तो हमें हमेशा परीक्षा से ठीक पहले दिमाग को तरोताजा करने के लिए इस तरह की पर्चियों की तैयारी की याद आएगी, जिसका अनुचित या

नाजायज तरीके से उपयोग करने का कोई इरादा नहीं होगा। मामले के इन पहलुओं को नजरअंदाज कर दिया गया है.

इन परिस्थितियों में उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को आगामी 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' में उपस्थित होने की अनुमति दें। इस परीक्षा में याचिकाकर्ता की उपस्थिति से उसके पक्ष में कोई समानता नहीं बनेगी। परिणाम एक सीलबंद लिफाफे में रखे जाएंगे और केवल न्यायालय के आदेश पर ही घोषित किए जाएंगे। ऐसे मामलों में उदारता माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वतंत्र दीक्षित बनाम गोविंद राम , (2001) 10 एससीसी 761 में सजा को 2-1/2 महीने तक कम करके दिखाई गई थी, जो पहले से ही गुजरी हुई निलंबन की अवधि थी

इस आवेदन को 1.5.2005 को आगे विचार के लिए सूचीबद्ध करें।

WP) संख्या 4505/2006

जवाबी हलफनामा दो सप्ताह के भीतर दाखिल किया जाए।

उसके बाद दो सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर दाखिल किया जाए।

1.5.2006 को पुनः अधिसूचित करें।"

15. इस अंतरिम आदेश पर टिप्पणी करने से पहले हम यह कहना चाहेंगे कि इस न्यायालय ने क्षेत्रीय अधिकारी, सीबीएसई बनाम शीना पीतांबरन और अन्य (2003) 7 एससीसी 719 (पैरा 6), सीबीएसई और अन्य बनाम पी. सुनील कुमार और अन्य (1998) 5 एससीसी 377, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय बनाम परमिंदर कुमार बंसल और अन्य (1993) 4 एससीसी 401 आदि के तहत शैक्षिक मामलों में ऐसे अंतरिम आदेश पारित करने को बार-बार अस्वीकार कर दिया है।

16. जैसा कि इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों में कहा गया है, ऐसे अंतरिम आदेश अनुचित सहानुभूति के समान हैं जो पूरी तरह से अनावश्यक हैं और अक्सर भ्रम पैदा करते हैं और शैक्षणिक अनुशासन और शैक्षणिक मानकों का विनाश करते हैं।

17. विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 31.3.2006 के अंतरिम आदेश पर आते हुए, यह ध्यान दिया जा सकता है कि आदेश के दूसरे ही वाक्य में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि रिकॉर्ड से यह पता नहीं चलता है कि चिट का वास्तव में परीक्षा में उपयोग किया गया था या नहीं ।जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, यह पूरी तरह से अप्रासंगिक विचार था। एक बार जब यह पाया जाता है कि चिट/कागज के टुकड़े में संबंधित परीक्षा से संबंधित सामग्री है तो यह कदाचार की श्रेणी में

आता है, चाहे उसका उपयोग परीक्षार्थी द्वारा किया गया हो या नहीं।

18. विद्वान एकल न्यायाधीश ने अंतरिम आदेश में इस तथ्य पर जोर दिया है कि प्रतिवादी ने माफी मांगी थी और चिट रखने की बात कबूल की थी। हमारी राय में यह फिर से एक गलत सहानुभूति है। हमारा दृढ़ मत है कि शैक्षणिक मामलों में सख्त अनुशासन होना चाहिए और कदाचार पर कड़ी सजा दी जानी चाहिए। यदि हमारे देश को प्रगति करनी है तो हमें उच्च शैक्षिक मानकों को बनाए रखना होगा, और यह केवल तभी संभव है जब शैक्षिक संस्थानों में परीक्षाओं में कदाचार पर सख्ती से अंकुश लगाया जाए।

19. अंतरिम आदेश में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा - "अगर हम अपने छात्र दिनों के बारे में सोचें, तो हमें हमेशा परीक्षा से ठीक पहले दिमाग को तरोताजा करने के लिए इस तरह की पर्चियों की तैयारी की याद आएगी, जिनका उपयोग करने का कोई और इरादा नहीं होगा।" यह एक अनुचित या नाजायज तरीका है"।

20. यहां फिर से, हम सम्मानपूर्वक विद्वान एकल न्यायाधीश की उपरोक्त टिप्पणी को स्वीकार नहीं कर सकते। एक न्यायाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को पृष्ठभूमि में रखे और उन्हें निर्णयों में सम्मिलित न करे। उनके छात्र जीवन में जो किया गया वह निश्चित रूप से मामले पर निर्णय लेने या अंतरिम आदेश पारित करने के

लिए अप्रासंगिक था। यह सच है कि परीक्षा शुरू होने से पहले कागज की पर्ची देखना कोई कदाचार नहीं है, लेकिन वर्तमान मामले में हम परीक्षा के दौरान इसके उपयोग को लेकर चिंतित हैं, न कि परीक्षा से पहले। इसलिए हम यह देखने में असफल हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश की उपरोक्त टिप्पणी को कैसे उचित ठहराया जा सकता है।

21. विद्वान एकल न्यायाधीश ने तब संस्थान को निर्देश दिया है कि वह प्रतिवादी को आगामी 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' में फिर से उपस्थित होने की अनुमति दे। हमारी राय में, यह फिर से पूरी तरह से अवैध था। जैसा कि नियम 9.2 (ऊपर उद्धृत) में बताया गया है, भले ही किसी उम्मीदवार ने केवल एक पेपर में अनुचित साधनों का उपयोग किया हो, उसे सभी पेपरों में असफल माना जाएगा। वर्तमान मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादी को 'फ्रंट ऑफिस परीक्षा' में कागज की एक पर्ची मिली थी, जो कि केवल एक पेपर था। हालाँकि, नियम 9.2 के मद्देनजर उसे पूरी परीक्षा यानी सभी पेपरों में दोबारा शामिल होना होगा, न कि केवल फ्रंट ऑफिस परीक्षा में।

22. उपरोक्त के मद्देनजर, हमारी राय है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 31.3.2006 को उपरोक्त अंतरिम आदेश पारित करना पूरी तरह से अनुचित था।

23. इसके बाद अंतिम निर्णय दिनांक 30.10.2006 में, विद्वान एकल

न्यायाधीश ने प्रतिवादी के परिणाम को 'फ्रंट ऑफिस' विषय के लिए तुरंत घोषित करने का निर्देश दिया, जिसके लिए प्रतिवादी दिनांक 31.3.2006 के अंतरिम आदेश के अनुसार अप्रैल 2006 में उपस्थित हुआ था। , और अन्य विषयों में प्रतिवादी के परिणाम की घोषणा करने के लिए जिसमें वह 2005 में उपस्थित हुआ था। विद्वान एकल न्यायाधीश का विचार था कि लगाई गई सजा अपराध के अनुपात से अधिक थी, खासकर जब से प्रतिवादी ने पश्चाताप दिखाया था और माफी मांगी थी।

24. हम भयभीत है कि हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते। जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, यदि हमारे देश को प्रगति करनी है तो हमें उच्च शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने और शैक्षणिक अनुशासन और शैक्षणिक कठोरता बनाए रखने में बहुत सख्त होना होगा। अनुचित साधनों का उपयोग करने वाले छात्रों के प्रति सहानुभूति पूरी तरह से अनुचित है।

25. इसके अलावा, प्रतिवादी/परीक्षार्थी को नियमों के तहत न्यूनतम सजा दी गई है और असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, इससे कम सजा नहीं दी जा सकती थी। यह सच है कि जब कोई व्यक्ति अपना अपराध कबूल करता है तो इसे अक्सर कम करने वाली परिस्थिति के रूप में माना जाता है और यदि यह स्वीकार्य है तो कम सजा की मांग की जाती है। हालाँकि, यह कोई पूर्ण नियम नहीं है और सभी प्रकार के मामलों में लागू

नहीं होगा। विशेष रूप से, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यदि हमारे देश को प्रगति करनी है तो शैक्षणिक मामलों में बिल्कुल भी नरमी नहीं बरतनी चाहिए। इसके अलावा, प्रतिवादी को नियम 9.2 के तहत न्यूनतम सजा दी गई थी और हम यह समझने में असफल हैं कि किसी विशेष मामले में विवेक का प्रयोग करने के अलावा, उसे कम सजा कैसे दी जा सकती थी। यह उस तरह का असाधारण मामला नहीं है, और किसी सहानुभूति की आवश्यकता नहीं थी।

25. विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने दिनांक 30.10.2006 के फैसले में निर्देश दिया है कि रिट याचिकाकर्ता का परिणाम 'फ्रंट ऑफिस' विषय में जिसमें वह अप्रैल 2006 में उपस्थित हुआ था और अन्य पेपर जिसमें वह 2005 में उपस्थित हुआ था, तुरंत घोषित किया जाए। हमारी राय में, यह एक अवैध निर्देश था, क्योंकि जैसा कि नियम 9.1 में कहा गया है, एक बार जब कोई उम्मीदवार एक विषय/पेपर में भी अनुचित साधनों का उपयोग करते हुए पाया जाता है, तो उसे सभी विषयों/पेपरों में अनुत्तीर्ण माना जाएगा और उसे ऐसा करना होगा । संपूर्ण परीक्षा को दोबारा लिखें, न कि केवल उस एक पेपर के लिए जिसमें उसे अनुचित साधनों का उपयोग करते हुए पाया गया है।

26. दिल्ली उच्च न्यायालय की विद्वान खंडपीठ के समक्ष एक अपील दायर की गई थी जिसे आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया है

जिसे हमने सावधानीपूर्वक पढ़ा है। हमें डिवीजन बेंच से सहमत होने में असमर्थता पर खेद है।

27. विद्वान खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के विचार को दोहराया है कि दी गई सजा अपराध के अनुपात से बाहर थी। हम उस दृष्टिकोण से पूरी तरह असहमत हैं। जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, प्रतिवादी पर न्यूनतम सज़ा लगाई गई थी और हम यह समझने में असफल रहे कि जब उसने अपना अपराध कबूल कर लिया है तब भी उसे और क्या सज़ा दी जा सकती थी। हमारी राय में, न्यूनतम सजा को माफ या कम करके विवेक का प्रयोग करने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं था।

28. इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान खंडपीठ ने वही गलती की है जो विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निर्देश देकर की थी कि प्रतिवादी का 2006 में आयोजित विषय 'फ्रंट ऑफिस' परीक्षा का परिणाम, 2005 में उसके द्वारा लिखे गए अन्य पत्रों के परिणाम के साथ तुरंत घोषित किया जाए। जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह निर्देश परीक्षा नियमों के नियम 9.2 के विरुद्ध है।

29. प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री भसीन ने तब प्रस्तुत किया कि परीक्षा नियम अमान्य थे। हमने नियमों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है और इसमें कोई अमान्यता नहीं पाई है। अनुच्छेद 14 या संविधान के

किसी अन्य प्रावधान या किसी अन्य क़ानून का कोई उल्लंघन नहीं है ।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ-साथ विद्वान डिवीजन बेंच के दोनों निर्णयों को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और यह अपास्त होने योग्य है। हम तदनुसार ऑर्डर करते हैं। परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है। विद्वान डिवीजन बेंच के साथ-साथ एकल न्यायाधीश के आक्षेपित फैसले को खारिज किया जाता है और रिट याचिका खारिज की जाती है।

31. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

32. इस मामले क़े निस्तारण से पहले, हम इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करना चाहेंगे, जिनमे बार-बार माना है कि उच्च न्यायालय को आमतौर पर उच्च बोर्ड के माध्यम से शैक्षणिक संस्थानों द्वारा स्थापित घरेलू न्यायाधिकरणों द्वारा शैक्षिक मामलों में पारित आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा, यूपी इलाहाबाद और अन्य बनाम बगलेश्वर प्रसाद और अन्य एआईआर 1966 एससी 875 (पैरा 12 के तहत), डॉ. जेपी कुलश्रेष्ठ और अन्य बनाम चांसलर , इलाहाबाद विश्वविद्यालय और अन्य एआईआर 1980 एससी 2141 (पैरा 17 के जरिए), राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम कर्नाटक विश्वविद्यालय और अन्य एआईआर 1986 एससी 1448 (पैरा 7 के अनुसार)। हम उपरोक्त निर्णयों में अपनाए गए दृष्टिकोण को दोहराना चाहते हैं, और आगे कहते हैं कि उच्च

न्यायालयों को आमतौर पर शैक्षिक अधिकारियों के कामकाज और व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि कुछ वैधानिक नियम या कानूनी सिद्धांत का स्पष्ट उल्लंघन न हो। साथ ही, शिक्षण संस्थानों की परीक्षाओं में कड़ी शुचिता होनी चाहिए और परीक्षाओं में अनुचित साधनों का सहारा लेने वाले अभ्यर्थियों के प्रति कोई सहानुभूति या उदारता नहीं दिखाई जानी चाहिए।

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल ''सुवास'' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी रणवीर चौधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।